जैनदर्शन में कर्मवाद और आधुनिक विज्ञान

डॉ. महावीर सिंह मुडिया

भारतीय आचारशास्त्र का सामान्य आधार कर्मशास्त्र है। कर्म का अर्थ है चेतना शक्ति द्वारा की जाने वाली क्रिया का कार्य-कारणभाव। भारतीय विचारकों ने कर्म मुक्ति के लिए ज्ञान, भक्ति एवं ध्यान का मार्ग बताया है।

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक संसारी आत्मा कर्मों से बद्ध है। कर्म के पाश में आत्मा वैसे ही बँधी है जैसे जंजीरों से किसी को बाँध दिया जाता है। आत्मा का यह कर्मबन्ध किसी अमुक समय में नहीं हुआ, अपितु अनादिकाल से चला आ रहा है जैसे—खान से सोना शुद्ध नहीं निकलता, अपितु अनेक अशुद्धियों से युक्त निकलता है। संसारी आत्माएँ भी कर्मबन्धनों से जकड़ी हुई हैं। यदि आत्माएँ किसी भूतकाल में शुद्ध हो ती हों तो फिर उनके कर्मबन्धन नहीं हो सकता, क्योंकि शुद्ध आत्मा कर्म मुक्त होती है। कर्म के अनुसार फल को भोगना नियति का क्रम है। कर्म सिद्धान्त को जैन, सांख्य, योग, नैयायिक, वैशेषिक और मीमांसक आदि आत्मवादी दर्शन तो मानते ही हैं किन्तु अनात्मवादी एवं अनीश्वरवादी दोनों ही इस विषय में एकमत हैं।

जैन दर्शन के अनुसार कर्म संस्कार मात्र ही नहीं हैं, अपितु एक वस्तुभूत पदार्थ है, जिसे कार्मण जाति के दलिक या पुद्गल माना गया है। वे दलिक रागी-द्वेषी जीव की क्रिया से आकृष्ट होकर जीव के साथ दूध-पानी की तरह मिल जाते हैं। जो भी कर्म किया जाता है वह जीव या आत्मा के साथ एकमेक हो जाता है और तब तक संयुक्त रहता है जब तक कि वह अपना फल नहीं दे देता है। इस प्रकार प्राणी द्वारा किया गया कोई भी कर्म आत्मा से पृथक् नहीं रहता।

कर्मवाद व कर्ममुक्ति

जैन कर्मवाद में कर्मोपार्जन के दो कारण माने गये हैं। योग और कषाय। शरीर, वाणी और मन के सामान्य व्यापार को जैन परिभाषा में योग कहते हैं। जब प्राणी अपने मन वचन अथवा तन से किसी प्रकार की प्रवृत्ति करता है तब उसके आसपास रहे हुए कर्मयोग्य परमाणुओं का आकर्षण होता है, इस प्रक्रिया का नाम आस्रव है। कषाय के कारण कर्म परमाणुओं का आत्मा से मिल जाना, अर्थात् आत्मा के साथ बँध जाना बन्ध कहलाता है। कर्म फल का प्रारम्भ ही कर्म का उदय है। ज्यों-ज्यों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मों का उदय होता जाता है त्यों-त्यों कर्म आत्मा से अलग होते जाते हैं। इस प्रक्रिया का नाम निर्जरा है। जब आत्मा से समस्त कर्म अलग हो जाते हैं, तब उसकी जो अवस्था होती है उसे मोक्ष कहते हैं।

वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर कर्म सिद्धान्त का स्पष्टीकरण

पुद्गल द्रव्य को २३ वर्गणाओं (classification) में रखा जाता है। इन वर्गणाओं में से कार्मण वर्गणा भी है जिसका अर्थ ऐसे पुद्गल परमाणुओं से हैं जो जीव द्रव्य के परिणमन के अनुसार (कभी शरीर, कभी मन, कभी वचन और कभी श्वासोच्छवास के रूप में) अपना स्वयं का परिणमन करते हुए जीव द्रव्य का उपकार करते हैं। इन कार्मण वर्गणा रूप पुद्गल परमाणुओं का जीव द्रव्य के साथ संयोग होने की प्रक्रिया वैज्ञानिक आधार से निम्न रूप में समझी जा सकती है :—

यह सम्पूर्ण लोक इन कार्मण वर्गणा रूप पुद्गल परमाणुओं से ठीक उसी प्रकार भरा है जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्युत चुम्बकीय तरंगे (elcctro magnetic waves)। ये परमाणु बहुत ही सूक्ष्मतम होने के कारण तरंग रूप में गमन करते हैं। यदि तरंग लम्बाई (λ) तथा आवृत्ति (n) तो $c = n\lambda$ c = प्रकाश का वेग।

अब एक खास आवृत्ति की विद्युत चुम्बकीय तरंगों को एक प्राप्तक (receiver) द्वारा पकड़ने के लिए उसमें एक ऐसे oscillator दौलित्र का उपयोग किया जाता है कि यह उसी आवृत्ति पर कार्य कर रहा हो। इस विद्युतीय साम्यावस्था (Electrical resonance) के सिद्धान्त से वे आकाश में व्याप्त तरंगे प्राप्तक द्वारा आसानी से ग्रहण कर ली जाती हैं।

ठीक यही घटना आत्मा में कार्मण स्कन्धों के आकर्षित होने में होती है। विचारों या भावों के अनुसार मन, वाणी या शारीरिक क्रियाओं द्वारा आत्मा के प्रदेशों में कम्पन उत्पन्न होते हैं। इन कम्पनों की आवृत्ति कषायों की ऋजुता या घनी संक्लेशता के अनुसार होती है। शुभ या अशुभ परिणामों से विभिन्न तरंग लम्बाइयों की तरंगे आत्मा के प्रदेशों से उत्पन्न होती रहती हैं, और इस प्रकार की कम्पन क्रिया से एक दोलित्र (oscillator) की तरह मान सकते हैं, जो लोकाकाश में उपस्थित उन्हीं तरंग लम्बाई के लिए साम्य (resonance) समझा जा सकता है। ऐसी स्थिति में भाव कर्मों के माध्यम से ठीक उसी प्रकार की तरंगे आत्मा के प्रदेशों से एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं, और आत्मा अपने स्वभाव गुण के कारण विकृत कर नयी-नयी तरंगे पुनः आत्मा में उत्पन्न करती है। इस तरह यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वचालित दोलित्र (self oscilleted oscillator) की भाँति व्यवहार कर नयी-नयी तरंगों को हमेशा खींचता रहता है। इसे जैन दर्शन में आस्रव कहा है।

ये पुदगल परमाणु आत्म-प्रदेशों में एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध ही स्थापित करते हैं न कि वे दोनों एक दूसरे में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसे सम्बन्ध के बावजूद जीव, जीव रहता है और पुदगल के परमाणु अपने परमाणुओं के रूप में ही। दोनों अपने मौलिक गुणों (Fundamentel properties) को एक समय के लिए भी नहीं छोड़ते। जैन दर्शन ने इस एकक्षेत्रावगाही सम्बन्ध को ही बन्ध कहा है।

यदि आत्मा के प्रदेशों में परमाणुओं की कम्पन-प्रक्रिया ढीली पड़ने लगे, तो बाहर से उसी अनुपात में कार्मण परमाणु कम आयेंगे अर्थात् आकर्षण-क्रिया हीन होगी, अर्थात् संवर होगा। जब नई तरंगों के माध्यम से पुदगल परमाणुओं का आना बंद हो जाता है तो पहले से बैठे हुए कार्मण परमाणु damted oscillation मंदित दौलित होकर निकलते रहेगें अर्थात् प्रतिक्षण निर्जरा होगी, और एक समय ऐसा आएगा जब प्राप्तक का दौलित्र oscillator कार्य करना बंद कर देगा। निर्विकल्पता की उस स्थिति में योगों की प्रवृत्ति एकदम बंद हो जायगी और संचित शेष न रहने पर फिर प्रदेशों की कम्पन क्रिया का प्रश्न ही नहीं उठेगा, अर्थात कर्मों की निर्जरा हो जायगी। सम्पूर्ण कर्मों की निर्जीर्णावस्था ही मोक्ष कहलाती है।

उदयपुर विश्वविद्यालय,
उदयपुर, राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org